Research Paper E-ISSN NO : 2455-295X | VOLUME : 9 | ISSUE : 7 | JULY 2023

भारतीय मध्य और पूर्वाधुनिक काल में ब्रज–भाषा साहित्य : एक संवेदनशील व्याख्या

कालू राम [1]

[1] सहायक आचार्य (अतिथि शिक्षक), हिन्दी साहित्य, राजकीय महाविद्यालय, जैतारण, जिला–पाली (राज.)

ABSTRACT:

KEYWORDS:

प्रस्तावना:

किसी भी भाषा और साहित्य के इतिहास–लेखन के लिए इनकी तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों का अवलोकन अनिवार्य होता है। ब्रज–भाषा तथा इसमें रचित साहित्य को किस प्रकार देखा और समझा गया, यह जानने के लिए हमें सुदूर अतीत तक जाने की आवश्यकता नहीं होगी। यद्यपि यह सत्य है कि इतिहास को निरन्तरता और परिवर्तन के रूप में समझा जाना चाहिए परन्तु ब्रज–भाषा और इसके साहित्य का आरम्भ लगभग सोलहवीं शताब्दी से माना जाता है तथा उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक ब्रज–भाषा ने हिन्दी/हिन्दवी साहित्य में अपना प्रभाव बनाए रखा। 350–400 वर्ष के अन्तराल में ब्रज–साहित्य विकसित हो कर लगभग लुप्त हो गया और आधुनिक हिन्दी ने इसका स्थान ले लिया। यदि देखा जाए तो अनेक प्रसिद्ध साहित्यिक इतिहासकारों ने हिन्दी साहित्य के इतिहास लिखे और भाषाओं के उत्थान व पतन तथा नई भाषाओं के उद्भव की व्याख्या की।[1] यह उचित भी है क्योंकि कोई भी बोली साहित्यिक भाषा के रूप में विकसित होती है तथा अनेक कारणों से उसका स्थान दूसरी भाषा ले लेती है। इस प्रक्रिया में उन कारणों का विश्लेषण किया जाता है, जिनके कारण स्थापित भाषा विस्थापित होती है। इस संदर्भ में शैल्डन पोलॉक ने अनेक लेखों व पुस्तकों के माध्यम से गहन शोध–प्रस्तुत किए हैं। 'द लैंगुएज ऑफ गॉड्स इन द वर्ल्ड ऑफ मैन .....' में उन्होंने न केवल भारतीय बल्कि विश्व की सभी बोलियों के भाषा के रूप में विकसित होकर साहित्यिक भाषा बनने के विभिन्न आयामों का विश्लेषण किया है।

इसी संदर्भ में उन्होंने ब्रज व अनेक भारतीय बोलियों के विकास के चरणों की व्याख्या की।[2] उनके अनुसार समाज में हो रहे राजनैतिक, सामाजिक व सांस्कृतिक परिवर्तनों के कारण एक बोली प्रशासनिक अनिवार्यता बन जाती है और प्रथम चरण में इसको कामकाजी भाषा बना लिया जाता है। इसे वे वर्न्यकुलराइज़ेशन कहते हैं। जब प्रशासकीय कार्य को अभिलेखन के उद्देश्य से संशोधित किया जाता है तब उसे लिटरेराइज़ेशन कहा जाता है। तीसरे चरण में भाषा को साहित्य–सृजन के लिए और विकसित करने पर टैक्सचुलाइज़ेशन किया जाता है। ये सभी परिवर्तन मुख्यतः राजनैतिक शक्तियों के उदय के कारण आते हैं। पोलॉक की तार्किक विचारधारा का संदर्भ वैश्विक था परन्तु भारतीय भाषाओं के संदर्भ में इस विषय को औपनिवेशिक साम्राज्य तथा प्राच्यवादी अवधारणाओं से जोड़ा गया है। इन्हीं विचारों के उत्तर व प्रत्युत्तर में राष्ट्रवादी साहित्यकारों ने उन्नीसवीं और बीसवीं शती के पूवार्द्ध में भाषा–साहित्य की प्रवृत्तियों के आधार पर हिन्दी–साहित्य का काल–विभाजन किया। उल्लेखनीय है कि औपनिवेशिक इतिहासकारों ने भारतीय इतिहास को भी तीन कालों में विभाजित किया तथा ओपनिवेशिक हितों की पूर्ति के लिए प्राचीन काल को स्वर्णिम युग (हिन्दू), मध्यकाल को राजनैतिक व सांस्कृतिक पतन (मुस्लिम) तथा आधुनिक काल को यूरोपीय आधुनिकता के रूप में प्रस्तुत किया।[3] सम्भवतः इसी आधार पर हिन्दी साहित्य का भी काल–विभाजन किया गया।

आदिकाल, जिसे वीर–गाथा काल भी कहा गया, सम्वत् 1050–1375 तक माना गया। पूर्व मध्यकाल/भक्ति–काल (सम्वत् 1375–1700), उत्तर मध्यकाल/ रीतिकाल (सम्वत् 1700–1900) तथा आधुनिक काल/गद्यकाल (सम्वत् 1900–1984) साहित्य के चार काल निर्धारित किए गए।[4] इनमें रीतिकालीन काव्य मुख्यतः ब्रज भाषा में लिखा गया इसीलिए मैं यहाँ रीतिकालीन साहित्य को ब्रज भाषा साहित्य के समतुल्य मान रही हूँ। रीतिकालीन काव्य काल को अलंकृत–काल, शृंगार–काल या रीति–शृंगार काल भी कहा जाता है क्योंकि यह साहित्य मूलतः शृंगारिक था। सैंकड़ों कवियों के असंख्य ग्रंथ अभी भी अनेक पुस्तकालयों, निजी संग्रहों में अप्रकाशित पड़े हैं हालांकि अनेक संस्थानों ने सम्पादित संस्करणों के माध्यम से इस साहित्य को प्रकाशित कर शोधकर्त्ताओं को उपलब्ध कराया है। औपनिवेशिक विचारकों में विलियम जोन्स ने प्राचीन भारतीय सभ्यता को तथा सस्कृत भाषा को विदेशी भ्रातृत्व से जोड़ने के लिए 1784 में एशियटिक सोसायटी के माध्यम से संस्कृत भाषा में लिखे ग्रन्थों के अनुवाद अँग्रेजी भाषा में प्रकाशित करवाए। इस कोशिश में जो उस काल में ब्रज–भाषा साहित्य था वो उपेक्षित रहा। जेम्स मिल उपयोगितावादी विचारधारा के प्रभाव में भारतीय उपमहाद्वीप की सम्पूर्ण संस्कृति को प्राच्यवाद के नाम पर अपरिवर्तनशील तथा असभ्य घोषित किया। इस प्रकार भारतीय साहित्य को पूर्णतः गुणहीन तथा अनैतिहासिक सिद्ध करने की चेष्टा की गई।

इस प्रकार के उपेक्षित वातावरण में हमारे राष्ट्रवादी लेखकों ने आधुनिक हिन्दी व क्षेत्रीय भाषाओं के माध्यम से भारत की साहित्यिक हीनता को कम करने की चेष्टा की फिर भी इनके दृष्टिकोण में ब्रजभाषा साहित्य अश्लील तथा गुणहीन माना गया।[5] इसने बृहद् काल व असंख्य ग्रंथों को साहित्य के इतिहास का पतनशील काल घोषित कर दिया गया। अगर ब्रज भाषा साहित्य के प्रति पक्षपाती रवैये के कारणों का विश्लेषण किया जाए तो हम समझ सकते हैं कि इस उपेक्षा को दोष केवल औपनिवेशिक विचारधारा को नहीं दिया जा सकता। इसका एक महत्त्वपूर्ण कारण भारतीय इतिहासकारों व साहित्यकारो की उदासीनता थी। उन्होंने इस साहित्य को मुगलकालीन पतनशीलता की अभिव्यक्ति माना।[6] इसके अतिरिक्त ब्रज–भाषा कवियों का राजाश्रय भी साहित्यिक गुणहीनता का सूचक था। नवीं से तेरहवीं शताब्दी के संस्कृत भाषा की काव्यांग परम्परा से विषय–सामग्री लेकर ब्रज–भाषा में लिखा काव्य मौलिक नहीं था। कुल मिलाकर किसी न किसी रूप में ये साहित्य विवेचना और या आलोचना होती रही और इसी प्रक्रिया से ब्रज भाषा साहित्य प्रकाश में आने लगा। औपनिवेशिक विचारकों तथा उनकी विचारधारा से प्रेरित भारतीय लेखकों ने क्षेत्रीय भाषाओं में लिखे गए इतिहास तथा विभिन्न बोलियों और भाषाओं को क्रमबद्ध तरीके से प्रकाशित करना आरम्भ किया।

ब्रज भाषा को देशज भाषा की श्रेणी में रखा गया। भारतीय भाषाओं के साहित्यकारों/कवियों व उनकी कृतियों का सर्वप्रथम संग्रह शिव सिंह सेंगर कृत 'शिवसिंह सरोज' 1883 में प्रकाशित हुआ। जार्ज ग्रियर्सन अपनी पुस्तक 'मॉडर्न वर्नेक्युलर, लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान' के लिए अधिकांश रूप से 'शिवासिंह सरोज' पर ही निर्भर करते थे। उनकी पुस्तक 1889 में प्रकाशित हुई।[7] ग्रियर्सन फ्रांसीसी इतिहासकार ग्रासा–दा–तासी की 'हिन्दवी आर हिन्दुस्तानी साहित्य का इतिहास' का संदर्भ भी देते हैं। तासी ने यह पुस्तक 1839 व 1847 में प्रकाशित करवाई थी। यद्यपि साहित्यिक इतिहासकार इसे इतिहास नहीं मानते क्योंकि इसमें कालक्रम व काल–विभाजन त्रुटिपूर्ण हैं। मेरा तर्क है कि तासी या ग्रियर्सन जैसे विद्वानों ने दशज भाषा साहित्य को जन–मानस के लिए उजागर किया। इसके पश्चात् 1893 ई. में काशी नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना हुई तथा 1900 ई. से ग्रन्थ प्रकाशन का कार्य आरम्भ हुआ।[8] रामचन्द्र शुक्ल व मिश्र बन्धुओं ने ब्रज भाषा की हस्तलिपियों को प्रकाशित करने के साथ कवि–परिचय, उनका साहित्य में स्थान तथा उनके काव्यों की संक्षिप्त टिप्पणियाँ भी सम्पादकीय में छापीं। इन साहित्यकारों के कार्य सराहनीय हैं परन्तु इनकी आलोचना को भी अनदेखा नहीं किया जा सकता। शुक्ल जी ने रीतिकालीन काव्य

जो कि ब्रजभाषा में लिखा गया था, उसका बद्ध और परिमित, भाषा की हीनता तथा विषयों की संकुचित प्रस्तुति मान लिया।[9] अश्लीलता और दरबारी आश्रय के कारण इस समूचे साहित्य को कौशल–विहीन मान लिया गया था। इन सभी दृष्टिकोणों के लिए वर्तमान में शुक्ल जी की कड़ी भर्त्सना हुई। रामविलास शर्मा, रामचन्द शुक्ल के द्वारा रीतिकालीन ब्रजभाषा काव्य की कड़ी आलोचना की पुष्टि करते हैं। इसके विपरीत चौथी राम यादव अपने लेख में रामचन्द्र की आलोचना में लिखते हैं कि शुक्ल इतने आधिकारिक प्रवृत्ति के थे कि तर्क का कोई स्थान नहीं छोड़ते थे।[10] यादव का विचार है कि हजारी प्रसाद द्विवेदी भी शुक्ल के वक्तव्यों को प्रथम और अन्तिम मानते थे। यद्यपि द्विवेदी अपनी पुस्तक 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' में अप्रत्यक्ष रूप से उनकी इस कमी का जिक्र भी करते हैं पर वे अपने विचारों को पाठक के निर्णय पर छोड़ देते हैं।

हमारा उद्देश्य शुक्ल की प्रशंसा या आलोचना करना नहीं है। मुझे लगता है कि इसी आलोचना के बाद ब्रज भाषा साहित्य का अनुशीलन संवेदना के साथ होने लगा। द्विवेदी ने माना कि श्रृंगारिकता भक्तिकाल से ही कवियों की रचनाओं में देखी जा सकती है और इसकी प्रेरणा रूप गोस्वामी की 'उज्ज्वलनील मणि' ग्रन्थ से मिली थी। ईश्वर की प्रेयसी, सखी तथा सखा, नायक–नायिका भेद या नख–शिख और बारहमासा में श्रृंगार–रस की प्रधानता थी। इस परम्परा को कायम रखने का श्रेय रीति कवियों को देने की अपेक्षा द्विवेदी कवियों की योग्यता और काव्य–सृजन पर आक्षेप करते हैं।[11] आश्रयदात्ताओं की समझ और भावना के अनुकूल कविता करने क कारण उनकी रचनाएँ काव्य की गहराइयों तक नहीं जा पाई। उन्होंने लिखा "रीतिकाल का काव्य यद्यपि श्रृंगार प्रधान है, पर इस श्रृंगार रस की साधना में जीवन की संतुलित दृष्टि का अभाव है; जैसे सब ओर से चोट खाकर, किसी ओर रास्ता ना पाकर, बुद्धि घर के भीतर सिमट गयी हो .....।"[12] इस साहित्य में उन्हें मौलिकता का अभाव लगा। उनकी आलोचना केवल ब्रजभाषा में लिखे साहित्य तक ही सीमित नहीं रही और उन्होंने सत्रहवीं शताब्दी को मुगलों के पतन का काल मान कर रुग्ण मनोभाव का काल मान लिया जो कि इस काल के काव्य में अभिव्यक्त हुआ।

ध्यान देने योग्य बात है कि शुक्ल व द्विवेदी जैसे विद्वान अपने तर्कों में विरोध प्रदर्शित करते हैं। एक ओर वे इस काल के साहित्य को सामन्ती राज्यों की विलासपूर्ण जीवनशैली का प्रतिबिम्ब मानते हैं तथा कवियों के काव्य–कौशल की आलोचना करते हैं तो दूसरी ओर रीतिकालीन कवियों की कृतियों व उनके काव्य–कौशल की सराहना भी करते हैं। आलोचनाओं का परिणाम यह निकला कि कुछ साहित्यकारों ने ब्रजभाषा साहित्य के सकारात्मक पक्षों को अपनी पुस्तकों के माध्यम से उजागर किया। नगेन्द्र ने 'देव और उनकी कविता' में देव कवि के काव्य–कौशल और उनके काव्य की सामयिक परिस्थितियों से पाठकों को अवगत कराया। इसी प्रकार राम कुमार वर्मा का साहित्यिक चिन्तन रीतिकालीन ब्रज भाषा साहित्य के प्रति संवेदनशील रहा। इसी प्रकार अनेकों पुस्तकें अलग–अलग कवियों की उत्कृष्ट शैली, नारी–चिन्तन और भाषा के बारे में प्रकाशित हुई। इन बदलते हुए परिमाणों से ब्रज भाषा साहित्य जगत में विमर्श का बिन्दु बना। परन्तु औपनिवेशिक इतिहासकारों व राष्ट्रवादी साहित्यकारों को इस साहित्य को अतीत के गर्त में दबा देने क लिए उत्तरदायी बनाना अनुचित होगा। कर्नल जेम्स टॉड ने राजस्थानी देशज भाषा के साहित्य के आधार पर राजस्थान का बृहत् इतिहास लिखा। विलियम इरविन ने 'लेटर मुगल्स' के लिए 'जगनामा' (श्रीधर ओझा कृत) को मुगल बादशाहों फर्रूखसियर और जहाँदारशाह के उत्तराधिकार के युद्ध (1712–14 ईस्वी) के वर्णन के लिए बड़ी खोज के बाद प्राप्त किया। इससे स्पष्ट है कि फोर्ट विलियम कॉलेज की भाषा की राजनीति, जिसमें खड़ी बोली को ब्रजभाषा की जगह प्राथमिकता दी गई, के बावजूद देशज भाषाओं को महत्त्व प्रदान किया गया। वास्तविकता यह है कि ब्रजभाषा और इसमें लिखे साहित्य को मुगल बादशाह अकबर (1556–1605 ईस्वी) की नीतियों से हतोत्साहित किया गया।

अकबर ने अनेक कारणों से फारसी भाषा को राज्य भाषा घोषित किया और सभी प्रशासनिक कार्य फारसी भाषा में करना अनिवार्य हो गया।[13] ये आदेश सभी मुगल प्रान्तों में लागू किया गया। यद्यपि इससे व्यावसायिक अवसरों में वृद्धि हुई और गैर मुस्लिम लोगों ने फारसी भाषा सीख मुगल साम्राज्य में नौकरियाँ प्राप्त कर लीं। परन्तु क्षेत्रीय राज्यों में ब्रज भाषा बोलने वाली आबादी में मुगल साम्राज्य के प्रति आक्रोश बढ़ गया। उनको लगा कि ब्रज भाषा व इसके बोलने वालों के प्रति यह असहिष्णुता की नीति थी तथा क्षेत्रीय राज्यों को मुगल साम्राज्य में विलीन करने के लिए अकबर ने भाषा की राजनैतिक आड़ ली थी। इस कारण अकबर को ब्रज भाषा कवियों को दरबार में आश्रय देना पड़ा। इसक बावजूद अबुल फजल ने 'अकबर नामा' में पन्द्रह स्थानीय भाषाओं की तालिका बनाई परन्तु ब्रज भाषा को उसमें शामिल नहीं किया। यह सम्भवतः अकबर की भाषाई राजनीति थी जिसमें क्षेत्रीय राज्यों को नियन्त्रण में रखने के लिए फारसीकरण का प्रयोग किया गया था। मैंने अपनी पुस्तक में तर्क दिया है कि ब्रज भाषा को इन प्रतिरोधी क्षेत्रीय शक्तियों ने मुगल साम्राज्य के विरुद्ध इस्तेमाल किया। अन्यथा विभिन्न देशज भाषाओं और विशेषकर अवधी भाषा की जगह सम्पूर्ण उत्तरी भारत में ब्रज भाषा साहित्यिक भाषा के रूप में नहीं अपनाई जाती।

विचाराधीन साहित्य को जिन कारणों से उपेक्षित रखा गया, वही कारण इतिहासकारों के लिए तर्क का कारण बने। 1990 के दशक से मध्यकालीन इतिहास का विश्लेषण एक नयी दृष्टि से आरम्भ हुआ। सत्रहवीं और अट्ठारहवीं शताब्दियों को मुगल–केन्द्रित परिमाणों की अपेक्षा मुगल–क्षेत्रीय राज्यों के संदर्भ में समझा गया। इस नयी विचारधारा के प्रख्यात इतिहासकारों को संशोधनवादी इतिहासकार कहा गया।[14] मुज़फ्फर आलम, सी.ए.बेली, बर्नार्ड कोहन, संजय सुब्रह्मन्यम् आदि इस वर्ग में आते हैं जिन्होंने इस काल को पतनशील काल नहीं समझा बल्कि इसम क्षेत्रीय राज्य, समाज व अर्थव्यवस्था विकसित हो रहे थे।

इसके अतिरिक्त मातहत अध्ययन (नइंसजमतदे जनकपमे) वर्ग के इतिहासकारों ने इस काल को जन–संस्कृति, उपेक्षित वर्गों तथा निम्न स्तरीय ढाँचों के उत्सर्ग को ध्यान में रख कर इस काल का विश्लेषण किया। इन सभी दृष्टिकोणों के कारण देशज भाषा में लिखे गए साहित्य को ऐतिहासिक स्त्रोतों के रूप में स्थान मिलने लगा तथा क्षेत्रीय समाज और संस्कृति को स्थानीय संदर्भ में समझने की चेष्टा की गई। इसी विचारधारा के समर्थन में मैंने जवाहर लाल नेहरू विश्वद्यालय, दिल्ली के इतिहास संकाय से 1989 में एम.फिल के लिए ब्रज भाषा साहित्य को आधार बनाया जो आगे चलकर पीएच.डी., पुस्तक व अनेक लेखों में परिवर्तित हुआ। जो कारण इस साहित्य की उपेक्षा के लिए प्रस्तुत किए गए वही कारण मुगल–राज्य सम्बन्धों को समझने में सहायक बने।

मुगल–साम्राज्य की शक्तियां को क्षेत्रीय राज्य व जमींदार वर्ग चुनौती दे रहे थे तथा मुगलों की शक्ति को कम कर रहे थे। नए–नए राजा अपनी अस्मिता को बनाने के लिए, सांस्कृतीकरण के लिए तथा स्थानीय आबादी से सद्भाव बनाने के लिए ब्रज भाषा को प्राथमिकता देने लगे। वैसे भी ब्रज संगीतमयी भाषा थी और उस समय लोकप्रिय कृष्ण–भक्ति के लिए उपयुक्त थी। अतः ब्रज भाषा तथा इस साहित्य को प्रोत्साहन मिला।

राजाश्रय ही एक कारण नहीं था। अनेकों ब्रजभाषा के सुकवि स्वतंत्र थे और वे स्वेच्छा से एक दरबार से दूसरे दरबार में कवि–गोष्ठियों में जाते थे। इनके काव्य में श्रृंगारिकता के अलावा अतीत की परछाई भी दिखाई देती है। आदेशित विषयों पर काव्य लिखने के आरोप के संदर्भ में यह जानना उचित होता कि ये स्थानीय राजा किन विषयों पर रचना लिखने का आदेश देते थे। ये नए–नए राजा अपनी वंशावलियाँ लिखवाते थे जिसमें अपने वंश को सूर्यवंश और चन्द्रवंश से जुड़वाते थे। ये संस्कृत ग्रन्थों को ब्रजभाषा में परिणत करवाते थे जिससे निम्न स्तरीय अस्मिता का सांस्कृतीकरण होता था। नायक–नायिका के अनेक रूपों व सह–सम्बन्धों पर लिखे मुक्तक नारीवाद के सजग उदाहरण प्रतीत होते हैं। इस युग के कवियों ने भक्ति की अटूट भावना से ओत–प्रोत ग्रन्थ लिखे। इसके बाद यदि भाषा की हीनता के विषय को लिया जाए तो इसमें हमें हिन्दी–फारसी–अरबी भाषाओं का सम्मिश्रण मिलता है जो सांस्कृतिक विमर्श को दर्शाता है। कुल मिलाकर वर्तमान में न कवल ब्रज भाषा बल्कि अन्य देशज बोलियों में लिखे साहित्य से पश्चिमी बंगाल, दक्कन तथा दक्षिणी भारत के इतिहास को एक नई दृष्टि प्रदान की गई है। अतः ब्रज साहित्य पूर्णतः काल्पनिक कविता नहीं अपितु हमारे मध्यकालीन समाज का दर्पण है।

REFERENCES

1. शुक्ल, रामचन्द्र, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' संस्करण 2013 : कान्ती पब्लिकेशन्स, दिल्ली। शुक्ल आरम्भ में आरम्भिक 1–3 अध्यायों में अपभ्रंश व देशभाषा काव्य के आधार पर आदिकाल का परिचय देते हैं। और भी देखें, द्विवेदी, हजारीप्रसाद, 'हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास' संस्करण छः, 1990 : राजकमल पकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, प्रस्तावना पृ.सं. 17–36

2. पोलॉक, शैल्डन, द लैंगुएज ऑफ गाड्स इन द वर्ल्ड ऑफ मैनः संस्कृत, कल्चर एंड पावर इन प्री मॉडर्न इंडिया' 2009; यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रैस, कैलिफोर्निया, पृ.सं. 19–23

3. मिल, जेम्स, 'द हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इडिया' भाग एक, पेपर बैक एडिशन, 2010, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, पृ.सं. 431

4. शुक्ल, पृ.सं. 21, द्विवेदी, पृ.सं. 37, 158, 208

5. मिश्र, भागीरथ, 'हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास', सेठ भोलाराम सकसरिया स्मारक ग्रंथमाल – ५, 1948 लखनऊ यूनिवर्सिटी, लखनऊ। पृ. 371 मिश्र, 'हिन्दी रीति साहित्य', 1956 : राजकमल प्रकाशन, बम्बई। पृ.सं. 30–51 शुक्ल, पृ.सं. 161–67

6. गेट्ज, हरमन, 'द क्राइसिस ऑफ इण्डियन सिविलाइजेशन इन द एटीन्थ एंड अर्ली नाइन्टीन्थ सेन्चुरीज़', 1937: कलकत्ता यूनिवर्सिटी सीरीज़, कलकत्ता। और भी देखें: राजे, डॉ. सुमन, 'साहित्येतिहास, संरचना और स्वरूप' 1975 : ग्रन्थम पब्लिशर, कानपुर, पृ.सं. 214–15

7. गुता, किशोरी लाल, 'हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास', 1961 : हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, द्वितीय संस्करण। पृ.सं. 8–29

8. ओरजीनी, फ्रेन्चेस्का, सम्पादित 'बिफोर द डिवाइड : हिन्दी एन्ड उर्दू लिटररी कल्चर' 2010 : ओरिएंट ब्लैक स्वान, दिल्ली। इस पुस्तक में वेलेरी रिटर द्वारा लिखित लेख "नेटवर्क्स, पेट्रन्स, एंड जाना फार लेट ब्रज भाषा पोयट्स"। पृ.सं. 250

9. शुक्ल, पृ.सं. 180–83

10. यादव, चौथी राम. "रीतिवादी आलोचना एण्ड रामचन्द्र शुक्ल" धूमकेतु जयप्रकाश, 2014, 31वाँ अंक, अभिनव कदम, मऊ (मध्यप्रदेश), राहुल संस्कृतियाँ सृजन पीठ। पृ.सं. 190–205

11. द्विवेदी, पृ.सं. 156–67

12. वही, पृ.सं. 63

13. आलम, मुज़फ्फर 'द लैंगुएजिस ऑफ पोलिटिकल इस्लाम इन इंडिया : ब 1200–1800, 2004 : परमानेंट ब्लैक, नई दिल्ली। पृ.सं. 115–40

14. अलवी, सीमा, 'द एटीन्थ सेंन्चुरी इन इंडिया', 2007 : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली तथा मार्शल पी.जे., 'द एटीन्थ सेंन्चुरी इन इंडियन हिस्ट्री' 2011 संस्करण, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस। इन दोनों सम्पादित पुस्तकों में संग्रहित लेख इस विचारधारा की पुष्टि करते हैं।

15. शर्मा, सन्ध्या, 'लिटरेचर, कल्चर एण्ड हिस्ट्री इन मुगल नार्थ इंडिया (1550–1800), 2011 : प्राइमस, दिल्ली।